10 बड़े विभाजन को पाटते हुए

jchUæukFk Vxkj dh iu% [kkt

विजय पडकी

गुरुदेव रबीन्द्रनाथ टैगोर इस देश के महानतम कलाकार ही नहीं, गहरी तार्किक सोच और शुद्ध वैज्ञानिक स्वभाव के इन्सान भी थे। अल्बर्ट आइंस्टाइन, जिन्हें अकसर 'सदी का वैज्ञानिक' माना जाता है, टैगोर के साथ विमर्श में रहे, और उन्होंने बेझिझक इस बात को स्वीकारा कि इस विमर्श के बाद उन्होंने स्वयं को पहले से अधिक ज्ञान–सम्पन्न पाया। इससे हमें कला और विज्ञान के प्रति टैगोर के परिप्रेक्ष्य के बारे में बहुत कुछ देखने को मिलता है। कई लोग टैगोर को इस उपमहाद्वीप का दा विंची मानते हैं, एक ऐसा महान विचारक जो कला और विज्ञान में कोई अन्तर नहीं करता था, और जिसने वास्तव में इन दोनों के परस्पर व्यवहार की लगातार जिन्दादिल छानबीन जारी रखी। यह शायद मानवता द्वारा ईजाद किया गया ऐसा विभाजन था जो उसके लिए किसी भी तरह मददगार नहीं था।

इस विभाजन का सामना करते हुए दो सवाल हमेशा हमारे सामने होते हैं:

- यह विभाजन हुआ कैसे?
- इस बारे में हम क्या कर सकते हैं?

शिक्षा की पाठ्यचर्या और उससे वाबस्ता शिक्षा–पद्धति इन्सान द्वारा बनाए गए हैं। इसलिए सम्भावना रहती है कि वे अपने समय के उत्पाद होंगे। भारत में पाठ्यचर्या–विषय के रूप में अँग्रेजी साहित्य को ही लीजिए। हम यह जानते ही हैं कि ब्रिटेन के बाहर के स्कूलों और कॉलेजों में अँग्रेजी साहित्य–शिक्षण औपनिवेशिक प्रक्रिया की पैदावार था। शुरुआत में यह विज्ञान, भूगोल या गणित की तरह पाठ्यचर्या में पढ़ाया जाने वाला 'विषय' नहीं था। एक नाटक से एक अंश यहाँ पर देना शायद उचित ही होगा। यह वार्तालाप लगभग 60 वर्ष के जीत मुखर्जी नाम के भारतीय इंजीनियर और ब्रिटिश भारत के एक स्कूल में उसकी शिक्षिका रही सुश्री एलिस टेलर के बीच है। जीत अपनी शिक्षिका से ब्रिटिश शैक्षिक व्यवस्था में प्राप्त शिक्षा के प्रति बहुत आभार प्रकट करता है। दूसरी ओर सुश्री टेलर बहुत बुरा महसूस कर रही है कि उसने युवा भारतीयों के दिमागों को प्रदूषित किया।

एलिस: *युद्ध, कत्ल–ए–आम, धरती की लूट को क्षमा किया जा सकता है, भुलाया भी जा सकता है। इन सबकी भरपाई की जा सकती है। लेकिन दिमाग को पहुँचाए गए स्थायी नुकसान को कभी क्षमा नहीं किया जा सकता। वह आपकी मौत के वक्त आपके साथ दफनाया नहीं जा सकता। वह आगे पीढ़ियों तक जाएगा।*

जीत: *आपने हमें विज्ञान और प्रौद्योगिकी दिए। संसार के साथ बात करने को एक भाषा दी, शेक्सपियर और .....*

एलिस: *वो मखमली जबान वाला मौकापरस्त?! उर्दू में उसके लिए क्या शब्द है – मतलबी, शायद?*

जीत: *विलियम शेक्सपियर, मतलबी!*

एलिस: *वो दिलफेंक जिसने अपनी मीठी जबान से लन्दन के अभिजात्य वर्ग तक का रास्ता बना लिया और उन्हें अपने शब्दजाल से मोहित कर अपने प्रिय प्रोजेक्टों, अपनी अल्हड़ फंतासियों के लिए धन वसूल कर लिया।*

जीत: *उस शब्द चतुर मोहकता को संसार की सौ जबानों में अनुवाद किया गया!*

एलिस: *सोचो, जीत, अगर यह साम्राज्य न होता तो क्या इस नाम–शेक्सपियर–का कहीं भी, कोई भी अर्थ होता?*

जीत: *कुछ भी कहो, यह महान साहित्य तो है।*

एलिस: *क्योंकि हमने तुम्हें यह विश्वास करना सिखाया कि यह महान साहित्य है। क्या तुम जानते हो, जीत, कि अँग्रेजी साहित्य साम्राज्य से पहले स्कूलों में कोई विषय ही नहीं था? भौतिक विज्ञान और गणित और भूगोल – हाँ, ये विषय सिखाए जा सकते थे। उनका अध्ययन किया जा सकता था। साहित्य तो बस पढ़ने के लिए, आनन्द उठाने के लिए था। इसे पढ़ाया या पढ़ा नहीं जाता था। अँग्रेजी साहित्य को पढ़ाई के पाठ्यक्रम के रूप में केवल साम्राज्य के हितों के लिए लाया गया।*

जीतः *क्या यह उसका दोष था कि वह इतिहास में एक महान लेखक के रूप में अलग दिखाई देता था?*

एलिसः *क्या यह उनका दोष है कि हर देश में उस जैसे सैकड़ों लोग, उस जितनी ही रचनात्मक ऊर्जा लिए हुए लोग, कभी भी बाकी संसार की नजरों में नहीं आए?*

*(**साभारः** गोल्ड एण्ड सिल्वर, बंगलौर लिटिल थियेटर, 1997। बंगलौर लिटिल थियेटर और लन्दन के रॉयल नैशनल थियेटर के बीच आदान–प्रदान के प्रोजेक्ट के हिस्से के तौर पर लिखा गया)।*

यह मेरा सौभाग्य है कि मैं देशीय ज्ञान–व्यवस्थाओं के क्षेत्र में एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रोग्राम से सम्बद्ध रहा हूँ। यह प्रोग्राम लातिनी अमेरिका, अफ्रीका और दक्षिणी एशिया के कई देशों में चल रहा है। इसके अन्तर्गत टिकाऊ खेती, सामुदायिक स्वास्थ्य, चिकित्सा व्यवहार, प्रौद्योगिकी–निर्माण, पोषण, जल प्रबन्धन आदि जैसे क्षेत्रों में स्थानीय लोगों के अनुभवजन्य ज्ञान–आधार का दस्तावेजीकरण किया जाता है। प्रथाओं की बुनियाद में मौजूद 'विज्ञान' कई बार बहुत प्रभावशाली और गम्भीर होता है हालाँकि समुदाय स्वयं उसे विज्ञान नहीं कहते। यह मिट्टी के संरक्षण की बात हो सकती है या फिर वनस्पतियों से औषधियाँ तैयार करने की कला। वास्तव में तो विज्ञान की अवधारणा को जिस रूप में हम जानते हैं, उस रूप में वह कई समुदायों में मौजूद ही नहीं है। प्रकृति के साथ एक होने की चेतना है, बस।

क्या यह सम्भव है कि कला और विज्ञान की अवधारणाएँ हमारी बोधात्मक व्यवस्था में एक ढाँचागत सैद्धान्तिक संरचना के उच्च–कोटि स्तर पर कार्य करती हों? दूसरे शब्दों में मान्यताओं की एक व्यवस्था जो तय करती है कि हम मान्यताओं की किन अन्य व्यवस्थाओं में विश्वास रख सकते हैं? इतिहास में इन दो अलग–अलग ढाँचागत सैद्धान्तिक संरचनाओं को ही लें :

- टॉलमी द्वारा प्रतिपादित धरती–केन्द्रीय ब्रह्माण्ड का मॉडल।
- कॉपरनिकस का सूर्य–केन्द्रीय ब्रह्माण्ड का मॉडल।

एक ढाँचागत सैद्धान्तिक संरचना के रूप में कार्य करते हुए पहले मॉडल ने तय किया कि सही विज्ञान और गलत विज्ञान क्या है। दूसरे मॉडल ने जब पहले का स्थान ले लिया, तो उसने भी ऐसा ही किया।

इसी प्रकार यह भी सम्भव है कि हमारे पास दो बहुत ही अलग–अलग ढाँचागत सैद्धान्तिक संरचनाएँ हों जो "सभ्य" लोगों की विज्ञान–प्रौद्योगिकी वाली विश्वदृष्टि तथा "देशज, स्थानीय" लोगों की कला–विज्ञान विश्वदृष्टि की व्याख्या करती हों :

- धरती इन्सान की है।
- इन्सान धरती का है।

यह दलील दी जा सकती है कि बच्चे के उद्देश्यपूर्ण बोधात्मक विकास की दृष्टि के नजरिए से कला और विज्ञान का विभाजन न केवल कोई मदद नहीं करता बल्कि असल में नुकसानदेह है। जैसा कि टैगोर का मानना था, यह अन्तर मनुष्य का बनाया है और वयस्कों की समस्या है। इसका कष्ट बच्चों पर नहीं डाला जाना चाहिए। अवधारणा के बनने के शुरुआती चरणों में जब अपने आसपास के तमाम अद्‌भुत किस्म के अनुभवों और उत्प्रेरकों को जाँचा–परखा जाता है, तो 'ज्ञान' की रचना और 'सत्य' पर बनने वाली राय के लिए परिप्रेक्ष्यों में विभिन्नता से बहुत लाभ प्राप्त होता है। जिस संसार में हम जी रहे हैं, उसमें होने वाली उल्लेखनीय घटनाओं की समझ और कद्र कला तथा विज्ञान में कोई अन्तर नहीं करती।

इस तरह अनुभव की विविधता के आलिंगन में अन्तर–इन्द्रीय अनुभव शामिल रहते हैं–जैसे, किसी तसवीर का अवलोकन करते समय किसी ध्वनि का देखना या संगीत का सुनना। वास्तव में इससे हम सीखने की एक स्वस्थ आदत में ढल सकते हैं जिसके तहत हम बाद के जीवन में बहुविध परिप्रेक्ष्यों की तलाश के लिए प्रवृत्त हो सकते हैं। इन्द्रियों से जुड़ी जानकारियों को सीमित खानों में रखकर वर्गीकृत कर दिया जाए तो चीजों की कद्र करने, उनकी समझ को समृद्ध करने का काम अवरुद्ध होता है। अकादमिक विषय–क्षेत्रों में अन्तर (और उनके लिए आवश्यक अनुशासन) की बात बाद के सालों के लिए तो महत्त्वपूर्ण हो सकती है लेकिन प्राइमरी स्तर की स्कूली–शिक्षा के दौर में इसकी जरूरत प्रतीत नहीं होती।

तर्क की यह धारा हमें इस व्यावहारिक सवाल की ओर ले जाती है कि शुरुआती सालों में ज्ञान–निर्माण के समावेशी

नजरिए को बढ़ावा देने के लिए क्या कुछ किया जा सकता है। टैगोर की योजना में तो इसका बहुत ही आसान जवाब था—कल्पनाशक्ति को बढ़ावा दो। कम—उम्र लोगों के साथ और उनके लिए अपने काम में टैगोर कहानियाँ बनाते थे तो उनमें एक बच्चे की मासूमियत के साथ—साथ विषयवस्तु की गहराई और गम्भीरता रहती थी। वे कभी भी बच्चों को सबक देने के मकसद से सम्बोधित नहीं होते थे बल्कि कहानी सुनाने की उनकी कला में यह स्वीकृति थी कि एक बच्चा उससे कहीं उच्च स्तर की कल्पना (और समझ तथा बोध) के काबिल होता है जितने के काबिल उसे वयस्कों द्वारा समझा जाता है। यह सिद्धान्त टैगोर ने स्वाभाविक, सहज बोध से पा लिया था और बाद में बोध—विज्ञान और बाल—विकास अध्ययनों ने इस सिद्धान्त को पर्याप्त रूप से बल प्रदान किया। कल्पना करने की क्षमता को अब स्वयं में एक उद्देश्य के रूप में लिया जाता है, कलाओं और विज्ञान की दूसरे स्तर की क्षमताओं से भी उच्च। कल्पनाशक्ति का मंत्र उनके आत्मकथात्मक विचारों समेत टैगोर की लिखतों में बार—बार आता है। उदाहरण के लिए *"... मुझे जब—जब मौका मिला, प्रकृति के जादुई आकर्षणों से मुझे अपार खुशी मिली। अत्यधिक भौतिक सम्पत्ति दिमाग को कुन्द और सुस्त कर देती है। हम भूल जाते हैं कि खुशी हमारे अन्दर से पैदा होती है न कि बाहर से। यह वास्तव में बड़े होने का सबसे पहला सबक है। एक बच्चे के पास जो कुछ है वह बहुत कम और तुच्छ हो सकता है लेकिन उसके अन्दर से प्राप्त होने वाली खुशी के लिए उसे इससे अधिक कुछ चाहिए भी नहीं। जब हम बच्चे को खिलौनों से लाद देते हैं तो उसे दुखी और दयनीय बना देते हैं, खेल की उसकी अनुभूति और सुरुचि को बिगाड़ देते हैं।"*

हम बहुत आसानी से कलाओं को कल्पनापूर्ण गतिविधि के एक रूप की शक्ल में देख सकते हैं। विज्ञान को भी एक कल्पनाशील गतिविधि के रूप में देखा जाना चाहिए, क्योंकि यह हमें उन अमूर्त तथ्यों को समझ पाने में मददगार होता है जिन्हें हम जरूरी नहीं कि परम्परागत अर्थों में ही देखें। जितना अधिक एक बच्चा कल्पना करने की क्षमता लिए होगा, उतनी ही अधिक उपजाऊ धरती ज्ञान—निर्माण के लिए होगी। कलाओं के समकालीन शिक्षाशास्त्रीय तरीकों का कल्पनाशक्ति की क्षमता को पोषित करने में बहुत महत्त्व हो सकता है, खासतौर से उस सूरत में जबकि वे उपदेशात्मक होने के बजाए सहजता पैदा करने वाले और मददगार होते हैं ।

स्कूली पाठ्यचर्या में थियेटर की गतिविधि को विविध बुद्धि कौशल विकसित करने में विशेष तौर से प्रभावशाली माना जाता है। साथ ही अनुभवजन्य कार्यप्रणाली पर इस गतिविधि की उच्च निर्भरता की वजह से मस्तिष्क के दाएँ और बाएँ हिस्से के विकास के अन्तर को घटाने और समाप्त करने में भी इसे प्रभावशाली माना जाता है। स्कूलों में थियेटर—अध्ययन के महत्त्व की इस समझ में से ही शिक्षा में थियेटर का विशेषज्ञ—विषय निकला है।

आम धारणा के विपरीत शिक्षा में थियेटर केवल पढ़े जा रहे पाठ के 'सन्देश' के विवरण वाले दृश्यों की 'अदायगी' ही नहीं है। अदायगी तो शिक्षा में थियेटर के सम्भावित महत्त्व का एक छोटा सा अंश मात्र है — वह अनुभवजन्य कार्य—विधि की उपलब्ध ताकत का इस्तेमाल नहीं करती। इसके अलावा इस प्रकार की अदायगी का नयापन जल्द ही घिस जाता है और उसे लम्बे अर्से तक बनाए नहीं रखा जा सकता। भारत में इससे सम्बद्ध जमीन बहुत विकसित नहीं है, मुख्य तौर से इसलिए कि थियेटर की वृहत संस्था ही बहुत कम विकसित है।

विजय पडकी *थियेटर—शिक्षक हैं। वे थियेटर में 55 वर्ष से सक्रिय हैं और 1960 में शुरू हुए बंगलौर लिटिल थियेटर के प्रारम्भ से ही आजीवन सदस्य हैं। व्यवसाय की दृष्टि से वे मनोविज्ञान—विशेषज्ञ और व्यवहारवादी वैज्ञानिक हैं तथा संगठन एवं सांस्थानिक विकास के क्षेत्र में महारत रखते हैं। वर्तमान में वे थियेटर—शिक्षा को अपना मिशन मानने वाली नवरचित एकैडमी ऑफ थियेटर आर्ट्स के अवैतनिक प्रधान हैं। उनसे vijay@bangalorelittletheatre.org या vpadaki.theatre@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवादः** रमणीक मोहन*